

इंडियन टीचिंग सर्विसेज क्यों नहीं?

जयकुमार

मध्यप्रदेश में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून जल्दी ही तीसरे साल में प्रवेश कर जाएगा। निजी स्कूलों की पहली कक्षा की 25 फीसदी सीटों पर गरीब और वंचित तबकों के बच्चों की प्रवेश प्रक्रिया भी शुरू होने वाली है। सवाल यह है कि इन दो सालों में शिक्षा के क्षेत्र में कुछ बदला है क्या? और अगर हां तो कितना? शिक्षा का अधिकार कानून तमाम बच्चों की शिक्षा तक पहुंच के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवाने की बात भी करता है। बच्चों की शिक्षा तक पहुंच हो रही है, इस बात से किसी को इंकार नहीं, लेकिन क्या उन्हें क्वालिटी एजुकेशन भी सुनिश्चित हो रही है?

इस साल की शुरुआत में सरकारी स्कूलों में करीब एक लाख शिक्षकों की भर्ती की जाएगी, सरकारी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए 800 करोड़ रुपए की योजना तैयार की गई है और कई जगहों पर निर्माण काम शुरू भी कर दिए गए हैं। यही नहीं, पिछले साल निजी स्कूलों में करीब डेढ़ लाख बच्चों को प्रवेश दिलाया गया। यह मध्यप्रदेश में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून के क्रियान्वयन का अब तक का लेखा-जोखा है। इससे शिक्षा की एक सुहावनी तस्वीर सामने आ रही है। ये तीनों तथ्य इस ओर इशारा कर रहे हैं कि प्रदेश बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवाने को लेकर कितना दृढ़ प्रतिज्ञ है। लेकिन इन तमाम आंकड़ों के पीछे की वास्तविक स्थिति जानना भी बेहद ज़रूरी है। इसी से इस बात का आकलन करना संभव होगा कि यह कानून, खासकर सरकारी शिक्षा व्यवस्था के हालात में सकारात्मक बदलाव लाने में कितना सफल होगा। एक आशंका यह जताई जाती रही है कि कहीं इससे भविष्य में शिक्षा व्यवस्था के पूर्ण निजीकरण का रास्ता तो नहीं खुल जाएगा?

प्रदेश में शिक्षा का अधिकार कानून (आरटीई) अप्रैल 2010 में लागू हुआ था। लेकिन वास्तव में इस पर अमल

2011 से ही हो सका है। इसमें राज्य सरकार या शिक्षा विभाग ने निजी स्कूलों में वंचित तबकों के बच्चों के लिए 25 फीसदी आरक्षण सुनिश्चित करने में जितनी दिलचस्पी दिखाई और उसके लिए कमरतोड़ मेहनत की, वह आश्चर्यजनक था। आरटीई के समर्थकों की मानें तो निजी स्कूलों में गरीबों और वंचित तबकों के बच्चों को प्रवेश दिलाना कानून का महज़ एक छोटा-सा हिस्सा है। शिक्षाविद विनोद रैना कहते हैं, “मुख्य ज़ोर सरकारी शिक्षा व्यवस्था में बदलाव पर होना चाहिए।” लेकिन क्या इस बदलाव के कोई संकेत नज़र आ रहे हैं? हमने जिन दो दर्ज़न सरकारी स्कूलों का सर्वे किया, उससे तो बहुत ज़्यादा उम्मीद दिखाई नहीं देती।

बीते कुछ वर्षों में स्थिति बद से बदतर होती गई है और यह कानून कोई आमूलचूल बदलाव ला सकेगा, इसमें संदेह ही है। सरकारी शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी तौर पर बदलाव इसलिए भी नज़र नहीं आ रहा, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था के कर्णधारों की सोच में बदलाव नहीं हुआ है। आज से करीब 15 साल पहले मध्यप्रदेश में शिक्षक कैडर को डाइंग कैडर घोषित कर दिया गया था। यही एक उदाहरण इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि प्रदेश में शिक्षा को लेकर किस तरह का उपेक्षापूर्ण रवैया रहा है। इतने सालों में सरकारें बदलती गई हैं, लेकिन इस रवैये में बदलाव नहीं हुआ। आज भी नियमित शिक्षक का कोई कैडर नहीं है, बल्कि अब तो यह स्थापित परंपरा ही बन गई है कि ठेके पर शिक्षकों की भर्ती कर लो। इन्हें ‘सम्मानजनक’ नाम संविदा शिक्षक ज़रूर दे दिया गया है, लेकिन इससे स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा है। आज हालात यह है कि 64 फीसदी शिक्षक संविदा शिक्षक या अनियमित शिक्षक हैं। एक लाख नई भर्तियों के बाद यह आंकड़ा बढ़कर 75 फीसदी हो जाएगा। शिक्षा विभाग के अधिकारियों का आकलन है कि जिस तरह से हर साल तीन से पांच फीसदी नियमित शिक्षक रिटायर

हो रहे हैं और उनका स्थान संविदा शिक्षक ले रहे हैं, उससे अगले दस सालों में नियमित शिक्षकों की संख्या पांच फीसदी से भी कम रह जाएगी।

तो क्या यह सरकारी शिक्षा व्यवस्था को खत्म करने का सुनियोजित प्रयास है? शिक्षक खत्म कर दो तो शिक्षा अपने आप खत्म हो जाएगी! सरकारी स्कूलों से शिक्षक खत्म किए जा रहे हैं, ताकि धीरे-धीरे ये स्कूल स्वयं ही अप्रासंगिक बन जाएं। शिक्षाकर्मी, संविदा शिक्षक, अध्यापक, गुरुजी, अतिथि शिक्षक, न जाने कितने नाम। लेकिन इनमें शिक्षक कहां है? ये सब वे नाम हैं, जो पांच से दस हजार रुपए मासिक वेतन में खुद की जिन्दगी की गाड़ी खींचने में ही संघर्षशील हैं। ये भला अपने छात्रों को जीवन का दर्शन कहां से पढ़ाएंगे?

आज के स्कूलों की तुलना 25 साल पुराने सरकारी स्कूलों से करें तो सरकारी शिक्षा व्यवस्था में एक सतत गिरावट साफ नज़र आएगी। भले ही स्कूलों के भवन बेहतर हो गए हों, उनमें बाउंड्री वॉल बन गई हों, नए शौचालय बन गए हों, लेकिन अब स्कूल जैसे नहीं रहे, जैसे पहले हुआ करते थे। इन सालों में शिक्षक भी बदल गए और वहां पढ़ने वाले विद्यार्थियों का समूह भी। अब इन स्कूलों में अफसरों, नेताओं, व्यापारियों, इंजीनियरों और शिक्षकों के बच्चे नहीं पढ़ते। पढ़ते हैं तो छोटे किसानों, मज़दूरों, हम्मालों के बच्चे। अब ये स्कूल मानो अपने आप एससी-एसटी के बच्चों के लिए 'आरक्षित' हो गए हैं। जिन भी स्कूलों का सर्वे किया, सबमें एक तथ्य आम था - इनमें करीब 90 फीसदी से भी अधिक बच्चे एससी, एसटी और ओबीसी वर्गों के गरीब तबकों के थे। मतलब साफ है कि सरकारी महकमा स्कूलों के बेहतर प्रबंधन के दबावों से मुक्त है, क्योंकि यह वह तबका है जो मध्यान्ह भोजन को ही अपना हक समझता है। और सरकार भी मध्यान्ह भोजन योजना को पुख्ता बनाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ती!

गरीब परिवारों के इन बच्चों में से भी अधिकांश बच्चे महज़ इसलिए सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हैं, क्योंकि वे मजबूर हैं। अगर इन बच्चों के अभिभावकों के पास विकल्प होता तो वे भी निजी स्कूल ही चुनते। और अब शिक्षा का

अधिकार कानून के तहत सरकार ने विकल्प मुहैया करवाने शुरू कर दिए हैं। कानून के तहत निजी स्कूलों में एक चौथाई स्थान वंचित तबकों के बच्चों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है।

जैसा कि पिछले साल देखा गया, राज्य ने इस प्रावधान के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया। ऐसा लगता है कि यह प्रावधान सरकारों के लिए अच्छी शिक्षा दिलवाने की जिम्मेदारी से स्वयं को मुक्त करने के एक औज़ार के रूप में सामने आया है - निजी स्कूलों को पैसा दो और शिक्षा मुहैया करवाने के दायित्व से मुक्त हो जाओ। पिछले दो दशक के दौरान यह सबसे बड़ा बदलाव है।

अंततः सरकार नामक सर्वशक्तिमान संस्था ने भी मान लिया है कि अच्छी शिक्षा दिलाना उसके बस की बात नहीं है। यह किसी सरकारी व्यवस्था के नाकारापन की निकृष्टतम अभिव्यक्ति नहीं तो और क्या है।

और जैसा कि प्रदेश में पिछले साल नज़र आया, शिक्षा विभाग का पूरा महकमा निजी स्कूलों में आरक्षित स्थानों पर गरीब बच्चों की भर्ती सुनिश्चित करने के प्रयासों में लग गया। निजी स्कूलों में यह देखने के लिए सरकारी शिक्षकों की ड्यूटी लगाई गई कि इसमें कहीं कोई कसर न छूट जाए। इस दौरान सरकारी स्कूलों में उन शिक्षकों की अनुपस्थिति से पढ़ाई का सत्यानाश हो, तो होता रहे (वैसे सरकार शायद मानकर चलती है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने आता कौन है!)। जैसा कि एक ग्रामीण स्कूल के हेडमास्टर कहते हैं, गांवों में इसका बहुत ही गलत संकेत गया। लोगों को लगा कि अब सरकारी मास्साब ही चाहते हैं कि उनके बच्चे प्राइवेट स्कूलों में पढ़ें। तो गांव के लोगों ने अपने नौनिहालों को प्राइवेट स्कूलों में भर्ती करवा दिया। यही नहीं, कुछ शिक्षकों ने उनकी सरकारी स्कूलों में भर्ती करवाने आए अभिभावकों से आरटीई के 25 फीसदी वाले प्रावधान का जिक्र कर खुद ही कहा कि वे पड़ोसवाली प्राइवेट स्कूल में बच्चों को भर्ती कराए। इससे उनके बच्चों का भविष्य सुरक्षित हो जाएगा।

सरकारी स्कूलों पर इसका नकारात्मक असर पड़ना

तय है। डिस्ट्रिक्ट इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (डाइस) की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2008-09 की तुलना में 2009-10 में म.प्र. में पहली से पांचवीं तक की कक्षाओं में सरकारी स्कूलों में दर्ज बच्चों की संख्या में करीब 5 फीसदी की गिरावट आई है। इसके उलट इसी अवधि के दौरान निजी स्कूलों में दर्ज बच्चों की संख्या में 2 फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। यह उस समय के आंकड़े हैं, जब प्रदेश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू नहीं हुआ था। कानून के लागू होने के बाद इस बात की आशंका बढ़ी है कि आने वाले दशक में सरकारी स्कूलों पर ताला डालने की नौबत आ जाएगी। कानून के तहत सभी निजी स्कूलों की 25 फीसदी सीटें गरीब व वंचित तबकों के बच्चों के लिए रिजर्व करने का प्रावधान है। यह वह तबका है जो इससे पहले अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने के बारे में सोच भी नहीं सकता था। लेकिन कानून से इनकी पहुंच निजी स्कूलों तक हुई है। भोपाल ज़िले के दो दर्जन सरकारी स्कूलों के सर्वे से पता चलता है कि सभी में पहली कक्षा में बच्चों की संख्या में पिछले साल की तुलना में काफी कमी आई है।

यह तो केवल आगाज़ है। निजी स्कूलों की संख्या बढ़ने से रिजर्व सीटों की संख्या भी बढ़ती जाएगी। शिक्षा विभाग के आला अधिकारी भी अनौपचारिक बातचीत में इस संभावना से इंकार नहीं करते हैं कि निजी स्कूलों में 25 फीसदी स्थान आरक्षित करने से सरकारी स्कूलों में आगे चलकर बच्चों की संख्या में काफी गिरावट आ सकती है। तब शिक्षकों की इतनी ज़रूरत नहीं रह जाएगी। इसी के मद्देनज़र राज्य सरकार शिक्षकों की आनन-फानन नियुक्ति करने से बचना चाहती है और संविदा व अतिथि शिक्षकों के भरोसे ही व्यवस्था चलाना चाहती है।

इस पूरी प्रक्रिया में एक बात साफ है - हर अभिभावक, चाहे वह गरीब हो या अमीर, अपने बच्चे की बेहतरी अच्छी शिक्षा में देख रहा है। प्राइवेट स्कूल व्यवस्था उनकी इसी महत्वाकांक्षा का प्रतीक बनकर उभरी है। प्राइवेट ऑपरेटर्स को इन महत्वाकांक्षाओं का बखूबी इल्म भी है। इसलिए वे संगठित या असंगठित रूप से बड़ी ही तेज़ी के साथ अपना विस्तार करते जा रहे हैं। डाइस की रिपोर्ट भी कहती है कि

आज प्रदेश में हर दिन एक नया प्राइवेट स्कूल खोला जा रहा है। सरकारी स्कूल व्यवस्था के कर्णधारों को भी यह अच्छी तरह मालूम है कि वे इस पूरे तंत्र के पिटे हुए मोहरे हैं। लेकिन अफसोस इस बात का है कि वे सरकारी शिक्षा व्यवस्था में सुधार करने की बजाय एक गुप्त साज़िश के तहत इसे खत्म करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इसलिए न तो नियमित शिक्षकों की भर्ती की जा रही है और न ही बेहतर शिक्षा का माहौल बनाया जा रहा है। ज़ोर केवल बुनियादी सुविधाओं के विकास पर है, क्योंकि निर्माण कार्यों में इस तंत्र ने 7 से 11 फीसदी का कमीशन फिक्स कर रखा है। न इससे ज़्यादा, न इससे कम। काश, ऐसी ईमानदारी और प्रतिबद्धता सरकारी शिक्षा व्यवस्था की बेहतरी के लिए होती, इस बात के लिए होती कि कैसे अच्छी प्रतिभाओं को शिक्षा कर्म से जोड़ा जाए, कैसे अच्छे बच्चों को सरकारी स्कूलों की ओर खींचा जाए। यदि ऐसा होता, तो शिक्षा का अधिकार कानून सफल और प्रासंगिक होता। लेकिन ऐसा होगा नहीं। उम्मीद करना स्वयं को धोखा देने के अलावा कुछ नहीं होगा।

आरटीई कानून के समर्थकों ने केवल पहला मोर्चा फतह किया है - कानून तैयार कर उसे लागू करवा दिया है। अगर वे वाकई शिक्षा को लेकर चिंतित और गंभीर हैं, सरकारी स्कूल व्यवस्था को बेहतर बनाना चाहते हैं तो उन्हें अगली लड़ाई केवल एक मुद्दे - भारतीय शिक्षा सेवा के गठन पर केंद्रित करनी होगी। अगर बेहतर प्रशासन चलाने के लिए आईएस का गठन हो सकता है, कानून व्यवस्था के संचालन के लिए आईपीएस बन सकती है, वनों के बेहतर प्रबंधन के लिए आईएफएस हो सकती है तो देश के नौनिहालों की बेहतर शिक्षा के लिए आईटीएस क्यों नहीं बन सकती? देश में ऐसे बहुत से लोग हैं जो अध्यापन के पेशे से जुड़ना चाहते हैं। वे आईटीएस के माध्यम से देश की बड़ी सेवा कर सकते हैं। अब इसमें बहुत से किंतु-परंतु आएंगे, बहुत-सी संवैधानिक अड़चनें भी आएंगी, लेकिन जहां चाह, वहां राह। लड़ेंगे तो जीतेंगे भी सही। नहीं भी जीते तो 'युद्ध' का शोर तो होगा ही। यह भी कुछ कम नहीं होगा! (**स्रोत फीचर्स**)